ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292RNI
REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.-243-248**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-III, Issues-33, YEAR-July-Sept. 2024

आर्य–समाज का शिक्षा–दर्शन

डॉ० राजेश कुमार पाण्डेय

1567, आवास विकास कॉलोनी, कटरा बस्ती (उ0प्र0), भारत

Received-15.09.2024, Revised-12.09.2024, Accepted-28.09.2024 **E-mail : pandeyrajesh1001@gmail.com**

सारांशः महर्षि दयानन्द सरस्वती मंत्रदृष्टा थे। उन्नीसवी सदी में भारत के चरम पराभव काल में उनका आविर्भाव हुआ। उस समय भारत राजनैतिक दृष्टि से परतंत्र, सामाजिक दृष्टि से पद्दलित, धार्मिक दृष्टि से पाखण्ड और आज्ञानान्धकार से आच्छादित शैक्षिक दृष्टि से विपन्न था। उस समय तक शिक्षा पर ईसाई स्कूलों का प्रायः एकाधिकार था जो शिक्षा के नाम पर अपना धर्म–प्रचार करते थे। महर्षि दयानन्द जी ने जटिल और असाध्य माने जाने वाले इस राष्ट्र रोग का समुचित निदान निर्धारित कर 'वेदों की और लौटो' के सद्घोष के साथ स्वराज्य, स्वदेश, स्वभाषा, स्वधर्म, स्ववेश, स्वसंस्कृति का ऐसा अभिनव मंत्र दिया कि विश्व विस्मित हो उठा।

कुंजीभूत शब्द– मंत्रदृष्टा, पराभव काल, आविर्भाव, राजनैतिक दृष्टि, पद्दलित, आज्ञानान्धकार, आच्छादित, विस्मित

स्वामी दयानन्द का मूलमंत्र था कि जनता का विकास और प्रगति सुनिश्चित करने और इनके अस्तित्व की रक्षा करने का सर्वोत्तम साधन शिक्षा है। महर्षि दयानन्द युगदृष्टा तथा मंत्रदृष्टा थे। उन्नीसवी शताब्दी में जब भारत राजनैतिक दृष्टि गुलाम, सामाजिक दृष्टि से आडम्बर एवं भेदभाव युक्त, धार्मिक दृष्टि से पाखण्ड एवं अज्ञानता के अंधकार में डूबा था तथा शैक्षिक दृष्टि से उद्देश्यहीन एवं विपन्न था। इस समय ईसाई स्कूलों का एकाधिकार था। जो ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार तक सीमित था। महर्षि दयानन्द ने जटिल और असाध्य माने जाने वाले इस राष्ट्र रोग का समुचित निदान निर्धारित कर 'बेदो की ओर लौटो' के सद्घोष के साथ स्वराज्य, स्वभाषा, स्वमेश, स्वसंस्कृति का ऐसा अभिनव मंत्र दिया कि पूरा विश्व विस्मित एवं भारत विश्व पटल कर पुनः आलोकित होने लगा। आर्य समाज इस तत्त्य को आत्मसात कर लिया था कि शिक्षा की जड़ें राष्ट्रीय भावना और परम्परा में गहरी जमी होनी चाहिए। हम एक प्राचीन और श्रेष्ठ परम्परा के उत्तराधिकारी है।

आज ज्ञान–विज्ञान के जगत में दर्शन की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं। अपनी सीमा में वे सभी तथ्य की विवेचना में उपयोगी है परन्तु वह विवेचना एक सीमा से आगे नही बढ़ सका।

यद्यपि भारत की परम्परा में दर्शन की तीन अन्य महत्वपूर्ण पद्धतियाँ और हैं– लोकायत दर्शन, बौद्ध दर्शन, आर्हत दर्शन। परन्तु इसमें अध्यात्म तत्व का उपयुक्त स्तर तक विवेचना न होने से इसकी गणना वैदिक दर्शनों में न होकर अवैदिक दर्शन माना जाता है।

दयानन्द सरस्वती के दर्शन को उनके प्रसिद्ध योगदान 'सत्यार्थ प्रकाश, वेदभाष्य भूमिका और उनके द्वारा सम्पादित पत्रिका 'आर्य पत्रिका' भी उनके विचार को दर्शाती है। दर्शन जीवन के प्रति दृष्टिकोण है अतः दर्शन जीवन तथा शिक्षा दोनों के लिए आवश्यक है। दर्शन जीवन के लक्ष्य को निर्धारित करता है। शिक्षा का सम्बन्ध जीवन से है अतः शिक्षा के लिए दर्शन की आवश्यकता स्वाभाविक है। दर्शन शिक्षा का एक प्रमुख आधार है। दर्शन द्वारा ही शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षालय, संगठन अनुशासन आदि को एक निश्चित रूप प्रदान किया जाता है। प्रत्येक दार्शनिक शिक्षक होता है और अपने दार्शनिक विचारों से शिक्षा को मार्गदर्शन करता है।

महर्षि दयानन्द की गणना ऐसे ही महामानवों में की जाती है। जिन्होनें अपने व्यक्तित्व एवं विचार सम्पदा से मानव जाति का प्रदर्शन किया। उनका व्यक्तित्व कृतित्व और नेतृत्व अपने क्रांतिकारी आभा के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखता है।[1]

दयानन्द जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के दो अध्यायों (2 और 3) को शिशुओं और किशोरों के लिए समर्पित किया है। स्वामी जी ने उस समय की शिक्षा प्रणाली की आलोचना की। इन्होने कहा कि यह शिक्षा प्रणाली अच्छे छात्र का निर्माण नहीं कर पा रही है। एक शिक्षित व्यक्ति को विनम्र होना चाहिए और अच्छे चरित्र को धारण करना चाहिए। उन्हे भाषण और दिमाग पर नियंत्रण रखना, ऊर्जावान होना, माता–पिता, शिक्षकों बड़ों और अतिथि का सम्मान करना, अच्छे पथ का पालन तथा बुरे तरीकों से दूर रहना उन्होंने बुकलेट लिखी जिसका नाम व्यवरभानुक्त।

इस पुस्तक में उन्होंने एक पंडित विद्वान व्यक्ति के गुणों को चित्रित किया, जो उन्हें सिखाने का हकदार था और उन्होंने एक मूर्ख व्यक्ति के व्यवहार का विवेचन किया, जिसे बच्चों की शिक्षा के लिए नही सौपना चाहिए।

स्वामी जी के अनुसार तीन चार विषय सतही ज्ञान से नहीं बने हैं परन्तु दुर्भाग्य से वर्तमान में ऐसा हो रहा है। स्वास्थ्य का विज्ञान, धनुर्वेद युद्ध का विज्ञान, गंधर्ववेद सौंदर्य कला, अथर्ववेद, व्यावसायिक प्रशिक्षण, खगोल विज्ञान, बीजगणित, अंकगणित, भूविज्ञान अंतरिक्ष विज्ञान आदि।

"शिक्षा दर्शन के क्षेत्र में मुख्यतः आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, यर्थाथवाद, प्रयोजनवाद आदि विचारधाराओं का प्रयोग पाया जाता है। भारत के जितने भी दार्शनिक हुए इनमें अधिकांश आदर्शवादी विचारधारा के पोषक रहे हैं। महर्षि दयानन्द भी एक शिक्षाशास्त्री के रूप में सबसे पहले आदर्शवादी रहें हैं वे मूलतः धार्मिक थे परन्तु उनका धर्म पूजा पाठ अथवा कर्मकांड तक सीमित न होकर संकीर्णता की परधि से बाहर तक व्याप्त था। उन्होंने धर्म को व्यापक और आध्यात्मिक धरातल प्रदान किया।

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-III, Issues-33, YEAR-July-Sept. 2024

उनकी दृष्टि में जो भी पक्षपात रहित, न्यायाचरण सत्य सम्भाषणादियुक्त है ईश्वराज्ञा वेदों से अविरूद्ध है वही धर्म है। महर्षि दयानन्द ने 'वेदों की ओर लौटो' का नारा दिया तथा वेद के अध्ययन का अधिकार सभी को दिया। महर्षि दयानन्द ने वेदों में निहित उच्चतर नैतिक, आध्यात्मिक मूल्यों, दार्शनिक तत्वों एवं सामाजिक हित की दृष्टि से विहित विधानों से मानव जाति को परिचित कराया।''[2]

वे केवल रंग रूप से ही हिन्दुस्तानी रह गये विचारों एवं रहन सहन से उन्होंने अंग्रेजों की संस्कृति एवं सभ्यता का पूर्णतः अपना लिया। इस दशा में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा की ऐसी पद्धति का प्रतिपादन किया जो भारतीय परम्पराओं के अनुरूप थी जिसमें वैदिक परम्पराओं के साथ–साथ ज्ञान विज्ञान के अध्ययन को समुचित स्थान दिया गया। जिसमें शिक्षा समाज के केवल वर्ग तक ही सीमित न रह जाये, जिसके अनुसार सबको शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर मिलता था और समाज में सब कोई अपनी योग्यता तथा क्षमता के अनुसार सामाजिक एवं आर्थिक स्थिर सुधार कर सकते थे। यह सही है कि महर्षि ने शिक्षा विषयक जिन सिद्धान्तों का निरूपण किया था वे प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के अनुरूप हैं पर साथ ही 'इस तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि तत्कालीन परिस्थितियों में उन्हें प्रयुक्त करने के जो साधन उन्होंने सुझाये वे उनके गंभीर एवं मौलिक चिंतन के ही परिणाम थे।

दयानन्द जी का शिक्षा दर्शन इनकी शिक्षा की योजना इनके रचनात्मक व्यापक चरित्र को प्रकाश में लाती है उससे पता चलता है कि शिक्षा के माध्यम से ही समाज का उत्थान संभव है। मनुष्य की गरिमा की भावना तब बढ़ती है जब वह अपनी आंतरिक आत्मा के प्रति संचेत हो जाता है और यही शिक्षा का उद्देश्य है। उन्होंने विज्ञान एवं प्रद्यौगिकी की प्रगति के माध्यम से लाए गए नए मूल्यों के साथ भारत के पारम्परिक मूल्यों का सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया।

वेद को सर्वज्ञानों का भंडार एवं स्रोत मानना तथा वैदिक ज्ञान में विश्वास करना उनको आदर्शवादी होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। आर्य समाज के शिक्षा का उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, गुरू–शिष्य सम्बन्ध, ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन आदि की परिकल्पायें आदर्शवाद से मेल खाती है।

महर्षि दयानन्द के समाज सुधार एवं राजनैतिक विचारों में यथार्थवादी विचारधारा पाई जाती है। 19वीं शताब्दी में अछूत, एवं सवर्ण में अन्तर, स्त्री शिक्षा एवं जनसमान्य में शिक्षा का अभाव, अंधविश्वास से समाज जकड़ा हुआ था ''ऐसी परिस्थित में जनसमान्य की शिक्षा की व्यवस्था, नारी शिक्षा की व्यवस्था, जातीय भेद तथा धार्मिक कट्टरता तथा अंधविश्वास की भावना को समाप्त करना, देश की स्वतन्त्रता तथा उन्नति का प्रयास स्वराष्ट्र प्रेम और स्वराज्य की भावना, स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग, राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग आदि महर्षि दयानन्द के यर्थाथवादी विचारधारा के अर्न्तगत आते हैं।''[3]

महर्षि दयानन्द ने तत्कालीन समाज में व्याप्त सभी बुराईयों को दूर करने के लिए निर्भय होकर उनपर आक्रमण किया वे 'संन्यासी योद्धा' कहलाए।

इन्होंने बाल विवाह तथा सती प्रथा का विरोध किया तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। इन्होंने यह माना कि जीव कर्म में स्वतन्त्र है तथा फल भोगने में परतन्त्र है। महर्षि दयानन्द सभी धर्मानुयायियों को एक मंच पर लाकर एकता स्थापित की। ये योगी थे तथा इनका प्राणायाम पर विशेष बल था। वे सामाजिक पुनर्गठन में सभी वर्णो तथा स्त्रियों की भागीदारी के पक्षधर थे।

महर्षि दयानन्द समाज सुधारक तथा धार्मिक पुनर्जागरण के प्रवर्तक तो थे ही, वे प्रचण्ड राष्ट्रवादी तथा राजनैतिक आदर्शवादी भी थे। उन्होंने राज्याध्क्ष तथा शासन की विभिन्न परिषदों एवं समितियों के लिए आवश्यक योग्यताओं को भी गिनाया है।(April 1-2006 WORLD"S PHILOSPHIC CNET)

महर्षि दयानन्द के विचारों में प्रयोगवाद का भी अंश है। उनका शिक्षा दर्शन आदर्शवाद एवं वैदिक दर्शन पर आधारित है वे जब तक विभिन्न तर्को शास्त्रोंक्त विधियों एवं प्रमाणों से किसी बात को सिद्ध नहीं कर देते उसे कदापि स्वीकार नहीं करते थे। इस प्रकार की शिक्षा विधि जान डिवी जैसे के प्रयोग एवं परीक्षण से मेल खाती है। अतः विधि के सम्बन्ध में स्वामीजी को थोड़ा सा प्रयोगवादी कहना उचित प्रतीत होता है।

महर्षि दयानन्द द्वारा रचित सत्यार्ष प्रकाश में जिन शिक्षण–सूत्रों पर विचार किया गया वह कतिपय इस प्रकार है–

1. बाल्यावस्था में अनिवार्य शिक्षा
2. निःशुल्क शिक्षा
3. बालक एवं बालिकाओं की पृथक शिक्षा
4. धार्मिक शिक्षा
5. गुरू–शिष्य में आदर्श सम्बन्ध
6. भूत–प्रेतादि की भ्रांत धारणा को समाप्त करना
7. वैज्ञानिक शिक्षा–सृष्टि नियमों का ज्ञान
8. शिल्प शिक्षा
9. शिक्षा का उद्देश्य–मानव निर्माण, आन्तरिक शक्तियों का विकास

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-III, Issues-33, YEAR-July-Sept. 2024

महर्षि दयानन्द सरस्वती मानव कल्याण एवं भारतीयों के विकास एवं सुख–समृद्धि के लिए ही आर्य समाज की स्थापना की थी। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य ''अज्ञानता का नाश तथा ज्ञान में वृद्धि करना'' भारत की दुर्दशा का प्रमुख कारण अन्धविश्वास युक्त समाज तथा अध्ययन–अध्यापन का आधोगामी होना। सम्पूर्ण जनसंख्या का अधिकतर भाग निरक्षर था कुछ कुलीन परिवारों तक ही शिक्षा सीमित हो गयी थी। इसका कारण शिक्षा का जन्म आधारित होना। ब्राह्मण वर्ग में संस्कृत भाषा और प्राचीन शास्त्रों में अध्ययन की जो प्रणाली प्रचलित थी, इसके द्वारा वेदशास्त्रों का समुचित ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता था और न ही विवेक और बुद्धि का प्रयोग कर नवीन ज्ञान की प्राप्ति व अनुसंधान जैसे जटिल कार्य किये जा सकते थे। जनता अन्धविश्वासों एवं कुरीतियों में जकड़ी थी।

भारत के निवासी अंग्रजों की तुलना में अपने आप को हीन समझने लगे, अपनी भाषा, वेशभूषा संस्कृति एवं सभ्यता का परित्याग कर ईसाई धर्म अपनाने लगे तथा संस्कृत एवं हिन्दी को छोड़कर अंग्रेजी भाषा की उत्कृष्टता को स्वीकार कर लिये। ईसाई मिशनरियों और सरकार द्वारा जो शिक्षण संस्थायें स्थापित की गयी, इसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी सब बातों में अंग्रेजों का अनुसरण करने में गौरव का अनुभव करते थे। और जैसे की मैकाले द्वारा 1835 में प्रतिपादित शिक्षा व्यवस्था के अनुसार धीरे–धीरे 'काले अंग्रेज' हो जाते थे।

वैदिक परम्परा के अनुसार बालक की शिक्षा का आरम्भ तो गर्भावस्था से ही हो जाता है। माता के गर्भ से बाहर आने पर जात–कर्म एवं नामकरण संस्कारों में बालक की जिहवा पर 'ओऽम' लिखने, कानों में वेदोऽसि की ध्वनि गुज्जारित करने एवं 'कोऽसि–कतमोऽसि–कोनामाऽसि0' वेद वचन द्वारा बालक को आरम्भ काल से ही इसकी राष्ट्रीयता, वेश, गोत्र, नाम एवं माता–पिता आदि का बोध कराने में प्रारम्भिक शिक्षा का समावेश है।

आर्यो का ज्ञान, आर्यो की शिक्षा और आर्यो का आदर्श, जड़ज्ञानवादी तथा राजसिक भोग परायण पाश्चात्य जाति के ज्ञान, शिक्षा और आदर्शो से कई अर्थो में स्वतन्त्र तथा भिन्न है। पाश्चात्य विचारकों का ज्यादातर मत जिस कार्य में स्वार्थ और सुख प्राप्त होने की सम्भावना न हो, उसे नहीं करना चाहिए।

आर्य लोग सर्वत्र सभी प्राणियों सब कामों में और सब फलों में नारायण को देखकर शत्रु–मित्र, सुख–दुख, पाप–पुण्य और सिद्धि–असिद्धि में समभाव रखते थे। किन्तु इस समभाव का यह अर्थ नहीं कि सब परिणाम उनको इष्ट, सब लोग उनके मित्र, सारी घटनायें उनको सुखदायनी, सब कर्म उन्हें करने योग्य और सब फल उन्हें वांछनीय थे।

आर्य लोग इष्ट को साधन और अनिष्ट को हटाने में सचेष्ट रहते थे। किन्तु इष्ट साधन से विजय के मद में मत्त नहीं होते थे। मित्र का विजय और शत्रु का पराजय उनकी चेष्टा का उद्देश्य होता था, किन्तु द्वेष और मित्र का अनैतिक पक्षपात कभी नहीं करते।

आर्य लोग कर्तव्य के अनुरोध से स्वजनों का संघार भी करते थे और विपक्षियों के प्राणों की रक्षा के लिए प्राण त्याग भी करते थे।

सुख उनको प्रिय और दुःख उनको अप्रिय अवश्य होता था, किन्तु न तो वे सुख में अधीर ही होते थे और दुःख में धैर्य और प्रीति के भाव से डिगते भी नही थे। वे पाप को हटाते और पुण्य का संचय करते थे, किन्तु पुण्य कर्म में गर्वित और पाप में पतित होने से भी हँसते–हँसते समाज से उठकर शरीर शुद्धि करके फिर आत्मोन्नति करने में सचेष्ट हो जाते थे। अवश्य ही जब कोई योगारूढ़ होकर गुणातीत भाव से कर्म करने में समर्थ होता था तब उनके द्वन्द्व का अन्त हो जाता था।

जगज्जननी जो कार्य देती थी वे बिना विचारे वही कार्य करते थे, जो फल देती प्रसन्नतापूर्वक उसका भोग करते, स्वपक्ष कहकर जो कुछ निर्दिष्ट करती उसी को लेकर माता का कार्य साधन करते, विपक्ष कहकर कुछ सिखाती उसी को आदेशानुसार दमन या नाश करते थे, बस यदि आर्य शिक्षा है। इस शिक्षा में द्वेष और घृणा का स्थान नही है। नारायण सब जगत हैं हम यदि पाश्चात्य भाव से राजनीतिक आन्दोलन करें तो द्वेष और घृणा अनिवार्य है एवं पाश्चात्यों के मल से निन्दनीय भी नहीं क्योंकि स्वार्थ का विरोध है, एक पक्ष का उत्थान और दूसरे पक्ष का पतन है किन्तु आर्यो का उत्थान केवल आर्य जाति का उत्थान नहीं वरन् आर्य चरित्र, आर्य शिक्षा और आर्य धर्म का उत्थान है।[4]

इन आदर्शो पर ही आर्य समाज के नियम आधारित है ये निम्नलिखित हैं–

1. आर्य समाज के नियम–

1. सब सत्य विद्या और पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।[5]
2. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनंत, निर्विकार अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वातर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करने योग्य है।
3. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।
4. सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिए।
6. संसार का उपकार करना उस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-III, Issues-33, YEAR-July-Sept. 2024

9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी, नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें।

आर्य समाज के नियम जो बम्बई में निर्धारित हुए–

1. सब मनुष्यों के हितार्थ आर्य समाज का होना आवश्यक है।
2. इस समाज में मुख्य स्वतः प्रमाण वेदों को ही माना जायेगा।
3. इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक प्रधान समाज होगा और अन्य उसकी शाखा समझी जायेगी।
4. प्रधान समाज के अनुकूल और सब समाजों की व्यवस्था रहेगी।
5. प्रधान समाज में वेदोक्त, धर्मानुकूल संस्कृत और आर्य भाषा में सदुपदेश के लिए नाना प्रकार के पुस्तक रहेंगे और एक 'आर्य प्रकाश' साप्ताहिक पत्र निकलेगा, ये सब समाज में प्रवृत्त किये जायेंगे।
6. प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरूष और दूसरा मंत्री तथा अन्य पुरूष और स्त्री ये सब सभासद होंगे।
7. प्रधान पुरूष उस समाज की व्यवस्था का यथावत पालन करेगा और मंत्री सबके पत्र का उत्तर तथा सबके नाम व्यवस्था का लेख करेगा।
8. इस समाज में सत्पुरूष, सदाचारी और परोपकारी सभासद रखे जायेंगे।6
9. प्रत्येक गृहस्थ सभासद को उचित है कि वह वह अपने गृह कृत्य से अवकाश पाकर, जैसा घर के कामों में पुरूषार्थ करता है उससे अधिक पुरूषार्थ इस समाज की उन्नति के लिए करे और विरक्त तो नित्य ही समायोन्नति में तत्पर रहे।
10. प्रति सप्ताह में एक दिन प्रधानमंत्री और सब सभासद समाज स्थान में एकत्रित हों और सब कामो से उस काम को मुख्य माने।
11. एकत्र होकर सर्वथा स्थिर चित्त हो, परस्पर प्रीति के प्रश्नोत्तर, पक्षपात छोड़कर करे फिर सामवेद का ज्ञान परमेश्वर, सत्यधर्म, सत्यनीति, सत्य उपदेश के विषय में ही बाजे आदि के साथ गान हो और उन्ही विषयों पर मंत्रों का अर्थ और व्याख्यान हो, फिर गान, फिर मंत्रों का अर्थ, फिर व्याख्यान, फिर गान आदि।
12. प्रत्येक सभासद न्यायपूर्वक पुरूषार्थ से जितना धन प्राप्त करे उसमें से आर्य समाज आर्य विद्यालय और आर्य प्रकाश पत्र के प्रचार और उन्नति के लिए 'आर्य समाज' कोष में 1 रू0 सैकड़ा दें। 'अधिकस्याधिकं फलं' यह धन उक्त कार्यो में ही व्यय होगा, अन्यत्र नही।
13. जो मनुष्य इन कार्यो की उन्नति और प्रचार के लिए जितना प्रयत्न करे उसका उतना ही अधिक आदर और सत्कार उत्साह वृद्धि के लिए होना चाहिए।
14. इस समाज में वेदोक्त प्रकार से अद्वैत परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना की जायेगी। स्तुति निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वाधार और सच्चिदानन्द इत्यादि विशेषणों से परमात्मा के गुण कीर्तन करना। प्रार्थना–उससे सब श्रेष्ठ कार्यो में सहाय चाहना। उपासना– उसके आनन्दस्वरूप में मग्न हो जाना।
15. इस समाज में निषेकादि और अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जायेंगे।
16. आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्य ग्रन्थों का पठन–पाठन हुआ करेगा और वेदोक्त रीति से ही सत्य शिक्षा, सब पुरूषों और स्त्रियों को दी जायेगी।
17. इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयत्न किया जायेगा, एक परमार्थ, दूसरे व्यवहार। इन दोनों का शोधन तथा सब संसार के हित की उन्नति की जायेगी।
18. इस समाज में न्याय जो पक्षपात से रहित और प्रत्यक्षादि प्रमाणो से यथावत परीक्षित सत्यधर्म वेदोक्त ही माना जायेगा। इसके विपरीत कदापि नहीं।
19. इस समाज में श्रेष्ठ विद्वान लोग सर्वत्र सदुपदेश करने के लिए समयानुकूल भेजे जायेंगे।
20. स्त्री और पुरूष इन दोनो के विद्याभ्यास के लिए पृथक–पृथक आर्य विद्यालय प्रत्येक स्थान में यथासंभव बनाये जायेंगे। स्त्रियों की पाठशाला में अध्यापिका आदि का सब प्रबन्ध स्त्रियों द्वारा और पुरूषों की पाठशाला में पुरूषों द्वारा किया जायेगा, इससे विरूद्ध नहीं।
21. इन पाठशालाओं की व्यवस्था प्रधान आर्य समाज के अनुकूल की जायेगी।
22. इस समाज में प्रधानादि सब सभासदों को परस्पर प्रीतिपूर्वक अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोध आदि दुर्गुणों को छोड़कर उपकार और सुहृदयभाव से निवैर्र होकर स्वात्मवत सबके साथ व्यवहार करना होगा।
23. सब व्यवहारों में न्याययुक्त, सर्वाहित साधक, जो सत्य बात हो, उसी को सभी सभासदों को प्रकट करके वही सत्य बात मानी जाये।
24. जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला, धर्मात्मा, सदाचारी हो उसको उत्तम सभासदों में प्रविष्ट करना, उसके विपरीत को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना, परन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना, किन्तु यह दोनों बातें श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही की जाये अन्यथा नहीं।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-III, Issues-33, YEAR-July-Sept. 2024

25. आर्य समाज, आर्य विद्यालय, आर्य प्रकाश पत्र और आर्य समाज के कोष– इन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधान आदि सब सभासद तन, मन, धन से सदा किया करें।
26. जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्य समाजस्थ मिले तब तक और की नौकरी न करें और न किसी और को नौकर रखें। वे दोनों परस्पर स्वामी– सेवक भाव से यथावत बने।
27. जब विवाह, जन्म, मरण या कोई अवसर दान करने को उपस्थित हो तब–तब आर्य समाज के निमित्त धन आदि दान किया करें। ऐसा धर्म का काम और कोई नहीं है, ऐसा समझकर इसको कभी न भूलें।
28. इन नियमों में से यदि कोई नियम घटाया या बढ़ाया जायेगा तब सब श्रेष्ठ सभासदों के विचार से हो, सबको विदित करके ऐसा करना होगा।

आर्य समाज के उपरोक्त दोनों ही तरह के नियमों में विद्या को अत्याधिक महत्वपूर्ण माना गया। विद्या से ही सत्य या ईश्वर की प्राप्ति संभव है– इस तथ्य पर जोर दिया गया। विद्या के प्रचार–प्रसार हेतु आर्य शिक्षण–संस्थाओं की स्थापना को आर्य समाज ने अपने कार्यक्रम में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान देकर अपने शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया। आर्य समाज एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था पर बल देता था जिसमें समाज के सभी वर्ग के लोगों के साथ समान व्यवहार और सभी को शिक्षा का समान अधिकार प्राप्त हो। आर्य समाज ने इस हेतु जगह–जगह पुरूषों और स्त्रियों के लिए अलग–अलग पाठशालाओं की व्यवस्था की है। आर्य समाज में दान पर जोर दिया। दान को धर्म का काम माना और इसे समाज के हर वर्ग के रक्षार्थ सदुपयोग किया। इस प्रकार आर्य समाज ने मानव के कल्याणार्थ अनेक नियमों की व्यवस्था की और इन नियमों का पालन करना हर व्यक्ति का धर्म माना।

आर्य समाज द्वारा भारत के शिक्षा क्षेत्र में एक नव युग का प्रारम्भ किया गया और ऐसी शिक्षण संस्थायें स्थापित की गई जिनमें सभी वर्णों एवं जातियों के बालक प्रवेश पा सकते थे। इनमें संस्कृत भाषा, वेद शास्त्र तथा प्राचीन साहित्य के साथ–साथ आधुनिक ज्ञान–विज्ञान के अध्यापन की भी समुचित व्यवस्था थी। इस प्रकार की शिक्षण–संस्थायें बालिकाओं के लिए भी पृथक रूप से खोली गई और एक ऐसी नयी एवं प्रगतिशील शिक्षापद्धति का सूत्रपात हुआ जो भारत के लिए सर्वथा उपयुक्त थी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का मन्तव्य था, कि शिक्षा सबके लिए है। समाज के किसी भी वर्ग को वे विद्या से वंचित नहीं रखना चाहते थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती मनुष्य मात्र को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करने के प्रबल पक्षपाती थे। उनके मत में किसी को भी विद्या से वंचित रखना सर्वथा अनुचित है। उनका मन्तव्य था कि, ''जन्म से सब कोई शूद्र ही होते हैं, शिक्षा और संस्कार द्वारा ही कोई व्यक्ति द्विज बनता है।'7

2. महर्षि दयानन्द का शिक्षा.दर्शन

विषय प्रवेशः डॉ0 भगवानदास के शब्दों में– स्वामी दयानंद हिन्दू पुनर्जागरण के मुख्य दूत और निर्माता थे। श्रीमती एनी वेसेन्ट के मतानुसार स्वामी दयानंद पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'भारत भारतीयों के लिए' इस नारे का उद्घोष किया। उनका आदर्श रहा– ''आर्यावर्त उठ, जाग, आगे बढ़, समय आ गया है, नये युग में प्रवेश कर।

महर्षि दयानंद एक क्रान्तिकारी राष्ट्र–विश्व द्रष्टा थे। आर्य और मानव धर्म उद्घोष उनका अवधारित लक्ष्य रहा। अशिक्षा–अंधविश्वास से युगीन भारतीय समाज को ऊपर उठाना उनका प्रधान जीवनोद्देश्य रहा। आधुनिकीकरण संचलित भारतीय पुनरूत्थान के आशय से भारतीय समाज को अधःपतन से बचाना उनका अभीष्ट और भारत में शिक्षा का अधिकाधिक प्रचार, ज्ञान–संस्कृति का पुनरीक्षण उनका संकल्पित लक्ष्य रहा और इसीलिए उन्होंने ऐसी शिक्षा के संचालन का नेतृत्व किया जो शरीर, मन, बुद्धि, नैतिकता समत्व सबका विकास करे। वे पुरूष के साथ नारी–शिक्षा समानता के प्रबल पक्षधर थे।

शिक्षा–दर्शनः स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संसार के लोगों को अंधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने के लिए 1875 ई0 में बम्बई में प्रथम 'आर्य समाज' की स्थापना की। उन्हीं के शब्दों में 'मेरा कोई नवीन कल्पना व मतमता–वर–चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं किन्तु जो सत्य है, उसको मानना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।'' उनके विचार हैं–

ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप निराकार, निर्विकार, सर्वशक्तिमान, न्यायी, दयालु, अजन्मा, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, अजर–अमर अभय, शाश्वत, पवित्र एवं सृष्टि का कर्त्ता–धार्त्ता है। उसी की उपासना करनी चाहिए।

वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है। इसका पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्मों का परम धर्म है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वथा उद्यत रहना चाहिए। सभी कार्य धर्मानुसार अर्थात् सत्–असत का विचार करके करने चाहिए।

संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य लक्ष्य है। अर्थात इसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक, अध्यात्मिक एवं मानसिक विकास का विधान किया जाना चाहिए। सबसे प्रीति पूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए। अविद्या का नाश एवं विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए वरन् सबकी उन्नति में अपनी भी उन्नति समझना चाहिए। सभी मनुष्य सर्वहितकारी सामाजिक नियमों के पालन में परतन्त्र किन्तु हितकर नियम में स्वतंत्र रहे।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने अपने धर्म को सर्वमान्य आधार प्रदान करते हुए उसे सार्वभौमिक बनाने का प्रयत्न किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने शिक्षा–दर्शन में शिक्षा को जाँति–पाँति के भेदभाव का प्रथम नहीं होने दिया है। इस क्षेत्र में उन्होंने समानता के आधार पर सभी बालक एवं बालिकाओं को अनिवार्य रूप से शिक्षा प्रदान करने की बात कही है। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है कि– ''इसमें राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पाँचवे तथा आठवें वर्ष के उपरान्त कोई मनुष्य अपने लड़के व लड़कियों को घर में न रख सके अवश्वमेव उन्हें पाठशाला में भेजें। यदि न भेजे तो दण्डित किया जाय।''[8]

इसी प्रकार वे ब्राह्मणों के अतिरिक्त शूद्रों को भी शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में थे। उनका मत था कि ईश्वर ने मानव की रचना समान ढंग से की है, इसीलिए उनकी शिक्षा–दीक्षा भी समान ढंग से होनी चाहिए। उनका विचार था कि ''क्या ईश्वर शूद्रों की भलाई नहीं चाहता, क्या ईश्वर ने शूद्रों के पढ़ने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है, यदि ऐसा होता तो उन्हे कान एवं जीभ क्यों देता? जिस प्रकार ईश्वर ने समस्त प्राणियों के लिए पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्य आदि वस्तुओं को बनाया है, उसी प्रकार उसने सब लोगों के लिए वेदों की रचना भी की है।9

स्वामी जी ने वर्ण–व्यवस्था के आधार पर व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया है। उन्होंने वेद–वेदांगो का अध्ययन–अध्यापन ब्राह्मणों के लिए आवश्यक बताया क्योंकि पढ़ना–पढ़ाना उनका व्यवसाय था। इसी प्रकार क्षत्रियों के लिए राजविद्या वैश्यों के लिए कृषि तथा व्यापार एवं शूद्रों के लिए शिल्प विद्या को ग्रहण करना आवश्यक बताया। वस्तुतः इस प्रकार के शिक्षा द्वारा वे एक कुशल नागरिक का निर्माण करना चाहते थे, जो कि समाज एवं राष्ट्र के उत्थान में अपना सक्रिय योगदान कर सके। सहशिक्षा के सम्बंध में उनके विचार रूढ़िवादी कहे जा सकते हैं क्योंकि वे इसके प्रबल विरोधी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके विचार तत्कालीन सामाजिक बुराइयों से प्रभावित हो गये थे। इसीलिए उन्होंने बालक तथा बालिकाओं की पाठशालाओं को काफी दूर–दूर तक स्थापित करने की बात कही है। उनका विचार है कि लड़कों के विद्यालय में लड़कियों तथा लड़कियों के विद्यालय में लड़कों का प्रवेश वर्जित होना चाहिए। यहाँ तक कि कर्मचारियों के नियुक्ति के सम्बंध में भी उन्होंने यही बात कही है। साथ ही उन्होंने ब्रह्मचर्य–पालन पर विशेष जोर दिया है।

धर्म और वेद प्रधान शिक्षा के हिमायतीः दयानंद सरस्वती ने धार्मिक क्षेत्र में महान योगदान किया है। सत्य का अनुसरण करना ही वास्तविक धर्म है, और वेद सभी सत्य विद्याओं का स्रोत है, धार्मिकता के द्वारा ही उन्होंने नैतिकता पर बल दिया है। धर्म के द्वारा ही जीवनोन्निति हो सकती है, अन्यथा नहीं। प्राचीनता पर अपने मन्त्र फूँका है– 'वेदों की ओर लौटो।' धर्म के द्वारा ही समाज एवं राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। इन्होंने स्थान–स्थान पर वैदिक धर्मशालाओं का निर्माण कराया और सम्पूर्ण भारत में ही नहीं अपितु अन्य देशों में अपने विचार प्रचारित किये। स्वामी जी ने आचरण को महत्वपूर्ण माना था, जन्म को नहीं। उन्होंने धर्म को सीधे–सीधे आचरण से जोड़ा था। धर्म से जुड़े सभी आडंम्बरों, पाखण्डों और अन्धविश्वासों का अपने तर्क के द्वारा खण्डन किया और धर्म को सीधे–साधे जीवन व्यवहार का अंग बनाया।

स्वामी जी ने 'स्वमंतत्यामंतव्य प्रकाश' के तीसरे अनुच्छेद में लिखा है– 'जो पक्षपातरहित न्याय चरण, सत्य भाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरूद्ध है, उसको धर्म मानता हूँ।''[10]

स्वामी जी ने अपने ग्रंथ 'ऋग्वेदादिभाष्य' में धर्म के लक्षण को स्पष्ट किया है–

'सत्य भाषणात् सत्याचरणाच्च पर धर्मलक्षण किचि त्रास्त्येव''।[11]अर्थात सत्यभाषण और सत्याचरण के अतिरिक्त धर्म का कोई दूसरा लक्षण नहीं है।अभिप्रायतः हम कह सकते हैं कि धर्म व्यक्ति के आचरण का निर्माण करने वाला तत्व है।''[12]

इस प्रकार दयानन्द सरस्वती की अध्यात्मिक एवं धार्मिक क्षेत्र में उपलब्धियों एवं सेवाएँ प्रशंसनीय है।

निष्कर्ष– स्वामी दयानन्द आधुनिक भारतीय शिक्षा–शास्त्रियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में शिक्षा को उच्च स्थान प्रदान किया है। उनके मत में व्यक्ति, समाज और राज्य की उन्नति तथा सुख–समृद्धि उसी दशा में संभव है, जब स्त्री–पुरूष सभी सुशिक्षित हों, सबको धर्म–अधर्म और कर्तव्य–अकर्तव्य का समुचित ज्ञान हो, साथ विद्या तथा विज्ञान का सबके कल्याण हेतु प्रयोग किया जाय। उनके मत में–मनुष्य के लिए वास्तविक आभूषण उसकी विद्या व ज्ञान ही है, सोने चाँदी के अभूषण नही।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. पाठक, पी0डी0 एवं जी0एस0डी0 त्यागी, (1974) षिक्षा के सामान्य सिद्धान्त पृ0– 279
2. आर्य, धर्मपाल (2006), 'बहुमुखी क्रांति के प्रेणता स्वामी दयानन्द (दैनिक जागरण लखनऊ), 21 फरवरी।
3. पाण्डेय, षिवमोहन एवं रमाषंकर पाण्डेय (1988), 'महान षिक्षा मनीषी', पृ0–8।
4. अरविन्द घोष 'धर्म एवं जातीयता' पृ0–82
5. दर्षन वाचस्पति, स्व प0विष्वबन्धु शास्त्री, आर्य समाज के दस नियमों की व्याख्या, पृ0–32
6. इन्द्र विद्या वाचस्पति, आर्य समाज का इतिहास, (प्रथम भाग), पृ0 325
7. सत्यकेतु विद्यलंकार, आर्य समाज का इतिहास, भाग– तीन, पृ0 103
8. डॉ0 शंकर दयाल शर्माः हमारे प्रेरणा पुंज, पृष्ठ संख्या 37
9. स्वामी दयानन्द सरस्वतीः ऋग्वेदादिभाष्य, पृष्ठ संख्या 395
10. महर्षि दयानन्द सरस्वतीः सत्यार्थ प्रकाष, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ सं0 78.79
11. महर्षि दयानन्द सरस्वतीः 'व्यवहार भानु'
12. विद्याविलासमन सो ध्रतषील षिक्षाः सत्यव्रता रहितमान महापहाराः।
13. संसार दुखदलनेन सुभूषिताये, धन्यानरा विहिता कर्म परोपकाराः।। (सत्यार्थ प्रकाषः तृतीय समुल्लास)